शोध आलेख

साम्प्रदायिक चेतना : रवीन्द्रनाथ और जगदीश चन्द्र के उपन्यासों के सन्दर्भ में

रीता कुमारी जायसवाल

अधिकांश हिन्दी उपन्यासकारों ने साम्प्रदायिक समस्या से जूझते हुए आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त किया है। धार्मिक उन्माद के दौरान शिकार आम आदमी ही होता है जो निरंतर ही अन्तर्विरोधों में घिरा हुआ है, अन्तर्निहित दुर्बलता उसे कमजोर और भीत बनाती है और महत्वाकांक्षी प्रवृति उसे भोग व लिप्सा में फंसा दमनकारी बनाती है। 'तमस' उपन्यास का शीर्षक ही उस अंधकार का सूचक है जो मनुष्य की मानवीयता और संवेदना को ढक लेता है। इन्हीं मानवीय प्रवृतियों का वर्णन यशपाल ने 'झूठा सच' में किया ह और यही प्रश्न पियंवद के 'वे वहां कैद हैं' में भी उठाया गया है।

वस्तुतः आम आदमी चाहे वह बहुसंख्यक समुदाय से हो या अल्पसंख्यक समुदाय से, जब साम्प्रदायिक उन्माद का हिस्सा बनता है, तब भी उसी की क्षति होती है और नहीं बनता है तब भी नुकसान उसी को उठाना पड़ता है। आम आदमी की इस पीड़ा को हिन्दी उपन्यासों में प्रमुखता से व्यक्त किया गया है। 'आखिरी कलाम' और 'काला पहाड़' में भी यह पीड़ा स्पष्ट रूप से दिखती है। साम्प्रदायिकता के कारण दिन–प्रतिदिन बढ़ती संवेदनहीनता और दंगों के आंकड़े देखकर आम आदमी चीत्कार कर उठता है – "कैसा होगा उस दुनिया का आदमी जहां युद्ध नहीं होगा, शोषण नहीं होगा। बेशक दूध की नदियां नहीं बहेंगी, पर किसी के हाथ में अमृत कलश भी नहीं होगा लेकिन पानी तो सबको मिलेगा। किसी को पत्थर उबालकर खाने की जरूरत नहीं होगी।" हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के स्वरूप पर चर्चा करते समय हम यही पाते हैं कि लगभग सभी उपन्यासकारों ने आम आदमी की पीड़ा को ही अपना विषय बनाया है।

'गोरा' के संदर्भ में साम्प्रदायिक स्वरूप का आकलन करते हैं तो पाते हैं कि बीसवीं सदी के आरम्भ से ही हिन्दू पुनरूत्थान का स्वर उठने लगा था। धर्म का रूप पर्याप्त हद तक विकृत हो चुका था। रवीन्द्रनाथ भारतीयता के संदर्भ में धर्म को अधिक महत्व देने के पक्षधर नहीं थे। इसी वैचारिक विचलन का प्रतिफलन है – 'गोरा यानि गौरमोहन, जिसे भारतीय इतिहास की विडम्बना भी बताया गया। गोरा सगर्व कहता है – "मैं हिन्दू हूं, बेशक इस धर्म का मर्म नहीं समझता पर कभी तो समझ जाऊँगा और यदि नहीं भी समझ पाया तो चलना तो इसी मार्ग पर है।" यह मनुष्य की वो मानसिक अवस्था है जो बलपूर्वक उसे सम्प्रदाय और धर्म से बांध कर रखती है। एक आयरिश दंपति की संतान गोरा जिसे एक ब्राह्मण दंपति ने पाला, अपने जैसे संस्कार दिए, जिसके बल पर उसने ब्राह्मणगौरव और शक्ति सम्पन्न जाति का अहंकार प्राप्त किया और जिसने उसे कट्टर हिन्दू बनाया। इसी अहंकार के दम पर उसने न सिर्फ अपने मित्रों बल्कि अपनी सच्ची प्रेयसी का प्रेम तक ठुकरा दिया। लेकिन उसका समस्त जाति गौरव एकबारगी ढह जाता है जब उसे पता चलता है कि वो ब्राह्मण की नहीं बल्कि एक आयरिश दंपति की संतान है। तब उसे अपने मिथ्या अहंकार जिसके बल पर ब्राह्मण दर्चस्व का दंभ पाले हुए था, पर पश्चाताप होता है। इस मिथ्या दंभ को भारतीय समाज और संस्कृति के लिए घातक बताते हुए गोरा का अभिनव रूपांतरण एक ऐसे पात्र में हुआ जो सर्वथा एक नई भावभूमि के साथ यथार्थ के धरातल पर खड़ा था।

'धरती धन न अपना' उपन्यास दलित जीवन में धर्म का बहुत अधिक महत्त्व नहीं है लेकिन अपने जीवन को सुधारने और मानवीय अस्मिता की स्वीकृति के लिए वे कई बार धर्म परिवर्तन करते हैं – "तुम जानते ही हो मेरा लड़का प्रकाश बहुत देर तक बेकार रहा। कहीं काम–धंधा नहीं मिलता था, लेकिन जब हम ईसाई बन गये तो पादरी ने उसे कह–सुनकर नौकरी भी दिलवा दी। अपनी बिरादरी का बन जाए तो नौकरी–चाकरी और शादी–ब्याह के सब बन्दोबस्त हो जाते हैं।" लेकिन उनकी मानवीय अस्मिता का फिर भी सम्मान नहीं होता। उपन्यास का नंदसिंह सिख और ईसाई दोनों धर्म अपनाकर देख लेता है लेकिन वह चौधरियों के लिए हरिजन ही रहता है। धर्म दलितों के लिए सामाजिक व्यवहार का मामला है, रूढ़ियों का नहीं।